

23

वर्ष : 2019-20

ISSN : 0976-5778

ईसुरी

बुन्देलखण्ड के आधुनिक साहित्यकारों पर केन्द्रित



विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा नामित शोध पत्रिका- संख्या : 48672

ईसुरी-23

(पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका)

वर्ष - 2020 ISSN : 0976-5778

प्रधान संपादक

चन्दा बेन

संपादक

राजेन्द्र यादव

(सचिव बुन्देली पीठ)

प्रबंध संपादक

आशुतोष कुमार मिश्र



प्रकाशक

बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,

सागर (म.प्र.)

अनुक्रम

प्रधान संपादक की कलम से...

- प्रो. चन्दा बेन 3

संपादकीय

- डॉ. राजेन्द्र यादव 5

बुन्देलखण्ड : कृति केन्द्रित मूल्यांकन

1. बुन्देली का सांस्कृतिक नाट्य उत्कर्ष (संदर्भ लोकनाथ सिलाकारी का राजा हरदौल बुन्देला) - प्रो. राजमति दिवाकर 9
2. बुन्देली का रामभक्ति काव्य (संदर्भ भगवानदीन मिश्र का राजेन्द्र विलास महाकाव्य) - प्रो. सुरेश आचार्य 12
3. बुन्देलखण्ड के रससिक्त अध्येता (संदर्भ हरिविष्णु अवस्थी का बुन्देलखण्ड की पारम्परिक जल संरचनाएँ) - प्रो. चन्दा बेन 14
4. बुन्देलखण्ड की समृद्ध परंपरा : प्रबोध महाकाव्य (संदर्भ जगदीश कुमार कुशवाहा) - प्रो. सरोज गुप्ता 18
5. बुन्देली भाषा का रसात्मक महाकाव्य (संदर्भ मायूस सागरी का ब्रजरज) - प्रो. चन्दा बेन एवं सुधीर साहू 20
6. सद्यः सीरोत्कर्षण सुरभिः : बुन्देली के ललित निबंध (संदर्भ पद्मश्री कैलाश मड़बैया के निबन्ध) - डॉ. आशुतोष 24
7. बुन्देली शब्दों का व्युत्पत्तिकोष (संदर्भ आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल) - डॉ. अफरोज बेगम 32
8. बुन्देली लोक का काव्यात्मक उछाह : ईसुरी (संदर्भ दया दीक्षित का फाग लोक के ईसुरी) - डॉ. सुजाता मिश्र 36
9. बुन्देली लोक संस्कृति का सृजनात्मक वैभव (संदर्भ मोतीलाल चौरसिया : बुन्देली लोकगीतों के सांस्कृतिक अध्ययन) - रतिराम अहिरवार 40

बुन्देलखण्ड : कृतिकार केन्द्रित मूल्यांकन

10. सागर जिले का साहित्यिक वैभव - वृन्दावन राय 'सरल' 45
11. अम्बिका प्रसाद दिव्य की काव्य-साधना - प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 49
12. लोकजीवन के चितरे कवि : अवधकिशोर जड़िया - प्रो. बहादुर सिंह परमार 59
13. जयन्ति ते सुकृतिनो - टीकाराम त्रिपाठी 66

सद्यः सीरोत्कर्षण सुरुभिः : बुन्देली के ललित निबन्ध

(संदर्भ पद्मश्री कैलाश मड़बैया के निबन्ध)

डॉ. आशुतोष*

I

“क्या वे लोग जो अपनी मातृभाषा का अपमान करते हैं, कभी देश का भला कर सकते हैं? मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि गुजरात के लोग अपनी मातृभाषा छोड़कर अन्य कोई भाषा अपना लें। ऐसा हो तो यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति न होगी कि जो लोग अपनी भाषा छोड़ देते हैं, वे देशद्रोही हैं और जनता के प्रति विश्वासघात करते हैं।”

(Mahatma Gandhi, Thoughts on National Language, Navjeevan Pub. House, Ahmadabad, pp.189)

II

गद्य को कवियों की कसौटी और निबन्ध को गद्य का निकष माना जाता है। ऐसा मानने के तर्क संगत आधार हैं। कवि के पास भाव की व्यञ्जना, सघन संवेदना और छंद की पूँजी होती है। वहीं निबन्ध में निबन्धकार के मुक्त मन और स्वायत्त विचार की उड़ान होती है। निबन्ध में वैचारिक स्वच्छंदता, वर्ण्य विषय की स्वतंत्रता और निबन्धकार के आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण के अभिव्यक्ति की अधिक सहूलियत रहती है। हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है कि “लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन-अनुभव सुनाता है और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने

के लिए आमन्त्रित करता है। उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबन्ध पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर करेगा। इसी आत्मीयता के फलस्वरूप निबन्ध-लेखक पाठकों को अपने पांडित्य से अभिभूत नहीं करना चाहता और अधिकाधिक ऋजु और उदार रूप में प्रकट होता है। निबन्ध की वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता भी इसी आत्मीय दृष्टि का परिणाम कही जा सकती है।” निबन्ध गद्य की सर्वाधिक सृजनात्मक विधा है। इसमें लेखक अपनी वैचारिकी को सहज और सहज को विचार की सरणि में प्रस्तुत करता है। अपनी इन विशेषताओं के चलते ही निबन्ध लेखक को अपने स्व के अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक ‘स्पेस’ उपलब्ध कराता है। निबन्ध की प्रकृति और हासिल के सन्दर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि “निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है। अर्थ-संधि-सूत्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न-भिन्न लेखकों के दृष्टि-पथ को निर्दिष्ट करती हैं। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। इसी का नाम है एक ही बात को भिन्न दृष्टियों से देखना। व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।”

निबन्ध की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य विधाओं में निबन्ध लेखक के स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व और मुक्त वैचारिक अधिष्ठान का रचनात्मक उपक्रम है। निबन्ध के कई अन्य प्रकार होते हैं किन्तु निबन्ध के जिस स्वभाव को यहाँ लक्षित किया गया वह ललित निबन्धों में सबसे ज्यादा प्रकट होता है। ललित निबन्ध वैचारिक, शास्त्रीय या सैद्धान्तिक निबन्धों से भिन्न और निबन्धकार की सहज वृत्तियों के ज्यादा नजदीक होता है। यदि गद्य कवियों की और निबन्ध गद्य की कसौटी है तो ललित निबन्ध, निबन्ध का उत्कर्ष है। ललित निबन्ध को व्यक्ति व्यंजक निबन्ध भी कहा जाता है। यह गद्य की एक आत्मीय और मनोरम विधा है। यह निबन्धकार के स्वायत्त एवं स्वतंत्र चिंतनधारा की भाषिक अभिव्यक्ति है। जिसमें व्यक्ति के मन की उड़ान और प्रकृति के लास्य का सहज उल्लास विद्यमान रहता है। अरूणेश नीरन का मानना है कि संवेदना के दीप्ति में जो लालित्य होता है या जो भाव-संवाद नैसर्गिक बल में कहीं मिलता है वह ज्ञान-गुमान और शास्त्र-चिंतन के बोझ-तल्ले दब जाता है। बतरस जैसी स्वच्छंद प्रकृति होती है ललित निबन्ध की। विधा की अर्गला से मुक्त लेकिन भाव की अर्गला से शृंखलित और अनुशासित। गपशप की ललित मुद्रा प्रजा को आलोकित करनेवाले कोण की रचना करती रहती है और तभी बतकही की बात-बात में निकलने वाली बात, एक निरर्थक आलाप-विलाप- संलाप न होकर संवाद के विशिष्ट आस्वाद से संपन्न होती है।”

प्रख्यात गद्यकार एवं आलोचक अरूणेश नीरन जी अपनी टिप्पणी में ललित निबन्ध की जिन खासियतों को रेखांकित करते हैं वे महत्वपूर्ण हैं, जैसे कि ललित निबन्ध की प्रकृति बतरस जैसी स्वच्छंद होती है, भाव की अर्गला से शृंखलित और अनुशासित होती है, गपशप की मुद्रा में आलोकित करती है, बतकही की सी स्वभाव के साथ इसमें बातों का एक नैरन्तर्य विद्यमान रहता है एवं संवाद के विशिष्ट आस्वाद से संपन्न होती है। ललित निबन्ध की इन उपलब्धियों पर तथ्यात्मक

ढंग से विचार करें तो हम यह सहज ही समझ सकते हैं कि ललित निबन्ध की उपर्युक्त सभी विशेषताओं को संभव बनाने के लिए हमारे पास एक समर्थ भाषा होनी चाहिए। यहाँ समर्थ भाषा का अर्थ शास्त्रीय या मानकीकृत भाषा से नहीं, बल्कि उस भाषा से है जो हमारी अनुभूतियों को समग्रता में धारण करती हो।

ललित निबन्धों की सफलता निबन्धकार लोकोन्मुखी दृष्टि और भावयित्री प्रतिभा से सम्पन्न भाषा पर निर्भर करती है। इसीलिए जिस भाषा में विचार व्यक्त किया जा सके, मनोभावों को अभिव्यक्त किया सके और जो भाषा मनुष्य की अनुभूतियों को उसके अधिकतम अभिप्रायों तक धारण कर सके; वही भाषा समर्थ मानी जायेगी और ऐसी समर्थ भाषा ही दीर्घजीवी होगी।

III

बुन्देली बुन्देलखंड की अत्यंत समादृत भाषा है। बुन्देली भाषा में साहित्यिक सृजन का गौरवशाली इतिहास रहा है। दूसरी अन्य भारतीय भाषाओं की ही तरह बुन्देली में भी सबसे पहले साहित्यिक लेखन के रूप में काव्य ही रचा गया। बाद के दिनों में बुन्देली भाषा की विकास-यात्रा में साहित्य की अनेक विधाओं में रचनाएँ होती रही हैं और हो भी रही हैं। कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं की श्रेष्ठतम रचनाएँ बुन्देली में उपलब्ध हैं। किसी भी भाषा की सफलता इस पर निर्भर करती है कि उसमें कितना और कैसा रचनात्मक लेखन हुआ है। भाषा के हासिल की दृष्टि से देखा जाय सृजनात्मक विधाओं की भाषा बनना उसकी सफलता है तो वहीं शास्त्र या विचार की भाषा बन जाना उसकी सार्थकता है। उदाहरण के तौर पर देखा जाय तो आधुनिक समय में संस्कृत हमारे रोजमर्रा के व्यवहार की भाषा नहीं है किन्तु शास्त्र और विचार की भाषा होने के कारण उसकी उपस्थिति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से देखा जाय तो ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बघेली, मालवी, कन्नौजी आदि के साथ ही बुन्देली भाषा भी अपनी श्रेष्ठतम सृजनात्मक लेखन की

पूँजी के बावजूद मात्र मनोरंजन, आनंद, व्यवहार-ज्ञान, तात्कालिक-बोध एवं काव्यत्मकता की अभिव्यक्ति की भाषा मान ली जाती हैं। इन भाषाओं का यदि भला करने का विचार हो या इनकी सर्वव्यापी सत्ता की स्थापना करनी हो तो सबसे ज्यादा जरूरी है कि इन्हें शास्त्र एवं विचार की भाषा बनाना होगा। मातृभाषा का सबलीकरण और उसके प्रति प्रेम का प्रकटीकरण उस भाषा में चुटकुला सुनाने या तुकबंदी करने से नहीं होता बल्कि यह तब संभव होता है जब हम अपनी भाषा में विचार कर सकें। कविता कहानी, उपन्यास से भाषा में गति आती है और निबन्ध एवं आलोचना से भाषा की गहराई बढ़ती है। कहना न होगा कि बुन्देली भाषा के पक्ष में ऐसा एक सार्थक प्रयास कैलाश मड़बैया ने किया है।

कैलाश मड़बैया बुन्देली के ख्यातलब्ध अध्येता हैं। बुन्देली भाषा के सामर्थ्य और सौन्दर्य के लिए नितान्त व्यक्तिगत स्तर पर क्रियाशील रहने वाले कैलाश मड़बैया अपनी इस भाषा की समस्त रचनात्मक पूँजी की गरिमा को स्वीकार करते हुए भी इसके बेहतर भविष्य के लिए प्रयासरत रहते आये हैं। बुन्देली भाषा के गौरवशाली सृजनात्मक अतीत और वर्तमान का परिदृश्य उनकी निगाहों के सामने है। वे एक दृष्टिसम्पन्न अध्येता की तरह बुन्देली के अपार रचना संचार में गोता लगाते हैं। उसकी उपलब्धियों से पुलकित होते हैं। किन्तु अपनी भाषा की अब तक की उपलब्धियाँ उन्हें आश्वस्त नहीं वरन बेचैन करती हैं। एक श्रेष्ठ भाषाविद् अपनी भाषा के वर्तमान पर गौरव करने के साथ उसके सामर्थ्य के विस्तार के लिए उद्यम करता है। बुन्देली भाषा के काव्य को दुनिया की किसी भाषा के काव्य के समक्ष रखा जा सकता है। किन्तु यहाँ एक स्वभाविक प्रश्न उठता है कि क्या बुन्देली गद्य की भी यही स्थिति है? इस प्रश्न का क्या जबाब हो सकता है, यह कोई रहस्य नहीं है। कैलाश मड़बैया के लिए भी यह प्रश्न बड़ा था। किन्तु उन्होंने इस प्रश्न के जबाब में बुन्देली भाषा की काव्यगत श्रेष्ठता का हवाला देकर बचने की कोशिश नहीं करते, वे इस प्रश्न का निर्भिकता

से सामना करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि “बुन्देली खों साहित्य में साँसों भाषा कौ सरुप दैवे गद्य, समर्थ होवो भौत जरूरी है। ई सें बुन्देली गद्य खों दैवे, समर्थ बनावे और सशक्त बनावे के लानें लगातार मेंत करवे की जरूरत है। कायकै ई क्षेत्र में पुराने दिनन में जित्तौ काम भऔ चाइयत तौ उत्तौ नइं भऔ।” यह साहसपूर्व स्वीकारोक्ति है। इस स्वीकारोक्ति में बुन्देली भाषा की अब तक श्रेष्ठतम सृजनात्मक परंपरा के प्रति कमतरी का एहसास नहीं, अपनी भाषा की परंपरा का ईमानदार मूल्यांकन का भाव है। जब वे कहते हैं कि ‘कायकै ई क्षेत्र में पुराने दिनन में जित्तौ काम भये चाइयत तौ उत्तौ नइं भऔ।’, तब वे इसके लिए किसी व्यक्ति या संस्था को प्रश्नांकित नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे इस अभाव का उत्स बुन्देली भाषा के विकास की ऐतिहासिक परिस्थितियों में बताते हुए कहते हैं कि “सियासती हमला बुन्देलखंड में हमेसई जारी रये ई सें जित्ती पद्य की जरूरत परी उत्ती गद्य की नई, कायकै साहित्य खों वार्ता, मानें हर विधा में धनी करवे की तरफन जादाँ ध्यान नईं दऔ गऔ। दूसरें जौ असफेर जागीरन में खण्ड-खण्ड होत रऔ सो राजा जागीरदार अपनैं अपनैं राज बचावे के स्वारथ की लराइयन में लगे रये। तीसरौ जौ कै राम की जनम भूम अयोद्धया और कृष्ण की जनम भूम मथुरा में भए सें अवधी और बृज कौ प्रयोग, धरम ध्यान में लगी जनता नें सहजरूप सें जादाँ करो।” कैलाश मड़बैया अपनी इस टिप्पणी में बुन्देली गद्य में हुए अपेक्षाकृत कम कार्य के जो कारण बताते हैं, उन पर विचार करना आवश्यक है। पहला है, ‘बाह्य आक्रमण’, दूसरा, ‘राजसत्ता की उपेक्षा’ और तीसरा है, धर्म-साधना की भाषा ब्रज और अवधी का होना। इन तीनों कारणों को यदि हम सूत्रबद्ध करें तो, बुन्देली में गद्य के अभाव का पहला कारण ‘ऐतिहासिक’ है, दूसरा, राजनैतिक हैं और तीसरा सांस्कृतिक। इस सूत्र के हवाले से हम इस निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं कि ‘किसी भी भाषा के चतुर्दिक उन्नयन और एक स्वतंत्र विचार सम्पन्न गद्य के विकास में ऐतिहासिक,

राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अपनी खास भूमिका का निर्वहन करती हैं।' बुन्देली गद्य की स्थिति पर विचार करते हुए कैलाश मड़बैया की प्रविधि एक श्रेष्ठ भाषा-वैज्ञानिक की है। दूसरी बात यह कि बुन्देली गद्य पर विचार उन्होंने बुन्देली गद्य में ही किया है। यदि उन्होंने अपने विचार हिन्दी, अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में किया होता तो वह एक कोरा वाग्विलास या जड़ सिद्धान्त बन जाता। ऐसे सिद्धान्तों का व्यावहारिक अनुप्रयोग कभी संभव नहीं हो पाता है। गाँधी जी का बहुउद्धृत कथन है कि, 'दुनियावालों से कह दो कि बापू को अंग्रेजी नहीं आती'। यह गाँधीजी का चर्चित बयान है। इसकी व्यापक चर्चा के पीछे तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भाषा अंग्रेजी का विरोध तो था ही साथ ही इस कथन की एक खास बात यह थी कि गाँधीजी ने यह बात हिन्दी में कही थी। यदि वे इसी बात को इस तरह कहते कि 'Tell the people of the world that Bapu dose not know english', तो उसका क्या वही अर्थ होता? यहाँ इस दृष्टांत का आशय सिर्फ यह है कि कैलाश मड़बैया ने बुन्देली गद्य की अनिवार्यता पर विचार बुन्देली भाषा के गद्य में कर वैचारिक साहस का परिचय दिया है।

हिन्दी पट्टी की भाषाओं के उत्थान की जब बात की जाती है, तब इसे अक्सर हिन्दी की अस्मिता और स्थिति के विरुद्ध जाने का खतरा रहता है। इस मुद्दे पर भी कैलाश मड़बैया का दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट है। बुन्देली भाषा को समर्थ बनाने की जरूरत क्या है? इसका जबाब मड़बैया एक प्रश्न के साथ करते हैं, "हम उनसे पूँछत कै बुन्देली संस्कृति कैसे बचें? फिर पेड़ बड़न लगत तौ जरेँ काटी जातीं का? भैये हमाऔ हिन्दी खों कमजोर करवौ नई, ई की जरन खों मजबूत करकें पेड़ खों मजबूत बनावौ लक्ष्य है। अगर जरेँ सुकै देव तौ पेड़ सोउ सूक जै। अबै हिन्दी के पेड़ खों भौत कछु अपनी जरन सें लैनें।" हिन्दी और उसकी उपभाषाओं के बीच अभिन्न सम्बन्ध है। उपभाषाओं की समृद्धि प्रकारान्तर से हिन्दी की ही समृद्धि है। इस

बात को मड़बैया ने पेड़ और उसके जड़ के जिस रूपक द्वारा समझाया है; वह विरल है। इसी बात को समझने और समझाने में भाषाविद् बहुत सारा कागज खराब करते रहे हैं। गाँधीजी ने 1909 में ही भारत की प्रान्तीय भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध भली-भाँति समझ लिया था। उनका पूर्ण विश्वास था कि "भारत का विकास और राष्ट्रीय एकता की रक्षा प्रादेशिक भाषाओं को दबाकर नहीं, उनके पूर्ण विकास से ही सम्भव है।" यह सच है कि राजभाषा की समस्या को जनभाषा का कोई ज्ञानकार प्रेमी ही सुलझा सकता है। साथ ही भाषा और संस्कृति के रागात्मक रिश्ते की स्पष्ट पहचान करते हुए कैलाश मड़बैया कहते हैं कि, "अगर बुन्देली मिट जै तौ एक रंग मुद जै, मानें बुन्देलखण्ड की भरी पूरी संस्कृति सोउ मिट जै। हमें का जौ नौनो लगै कै हम आला-ऊदल, छत्रसाल, हरदौल, दुर्गावती और लक्ष्मीबाई, के बलिदान खों बिसर जायें?, ईसुरी की फागें गावौ भूल जायें? कजरी, दिवारी, राई बिसर जायें? साँसी तौ जा है कै हम अपनी भाषा जब जब भूलत, तब तब हमाई संस्कृति पै बायरी संस्कृति हमला बोल देत।.. और हम अपनी जमीन खोउन लगत।" भाषा का सम्बन्ध संस्कृति से होता है और संस्कृति का सम्बन्ध उस भाषा भाषी जन समुदाय के जातीय पहचान से होता है। भाषा के नष्ट होने से संस्कृति और जातीय पहचान दोनों के समक्ष संकट पैदा हो जाता है। इस बात को व्यवस्थित ढंग से समझने-समझाने का कार्य प्रख्यात चिंतक-आलोचक रामविलास शर्मा ने किया है। वे भाषा, संस्कृति और इतिहास के प्रश्न पर कहते हैं कि, "किसी देश की प्रगति के लिए जैसे उसके इतिहास का ज्ञान आवश्यक होता है, संकट के समय जैसे जातीय इतिहास का ज्ञान, जातीय संस्कृति पर अभिमान, प्रेरणा बन जाता है, वैसे ही किसी देश का नाश करना हो, तो सबसे पहले उसके इतिहास को झुठलाना चाहिए, उसकी संस्कृति पर आक्रमण करना चाहिए।" रामविलास शर्मा के सामने संस्कृति की ऐतिहासिक उपादेयता स्पष्ट थी। जिस समाज की संस्कृति बचेगी तो ही वह समाज

भी बचा रह पायेगा। संस्कृति स्वयं को भाषा में भी अभिव्यक्त करती है। इसलिए भाषा का बचा रहना व्यक्ति, समाज, संस्कृति सभी के लिए अपरिहार्य है। इस लिहाज से विचार किया जाय तो कैलाश मड़बैया का बुन्देली भाषा को बचाने और विकसित करने का संकल्प और उसके मुताबिक कर्म दोनों वरेण्य हैं।

IV

कैलाश मड़बैया बुन्देली के योद्धा लेखक हैं। बरसो पहले बुन्देली भाषा की चतुर्दिक सम्पन्नता का संकल्प लिया और 'एकला चलो रे' की तर्ज पर चल पड़े। भाषा की राह पर भाषा की थाती संभाले। इस राह में उन्हें शूल भी मिले और फूल भी मिले। लेकिन शूल हो या फूल किसी से भी वे प्रभावित नहीं हुए। अपने संकल्प को याद रखा और बुन्देली भाषा की गली-गली की थाह लेते-पाते रहे। उन्होंने स्वयं अपने इस संकल्प के बारे में कहा है कि "बात बुन्देली भाषा खों समर्थ बनावे की है सो बुन्देली वार्ता और गद्य में भी निबंध कौनउं भाषा की कसौटी मानी जात। बुन्देली पद्य खों सम्पन्न, मानें धनी बनावे खों हमने 'बुन्देली के प्रतिनिधि कवि' और बुन्देली खण्डकाव्य 'जय वीर बुन्देले ज्वानन की' पोथी छापी, इतिहास बचावे 'बुन्देलखण्ड के इतिहास पुरुष' और 'बिंध्य के बाँकुरे', पानी बचावे सूका परो सो 'प्यासा बुन्देलखण्ड', हमाई बड़े बूड़न कीं कई कथा-कानियाँ नई हिरा जायें सो 'बुन्देलखण्ड की लोक कथायें-बुन्देली में' छापी। बुन्देल गद्य के लानें पैली पोथी 'बाँके बोल बुन्देली के', फिर बुन्देली लेखन की पोथी 'भीठे बोल बुन्देली के' और फिर बुन्देली बोली खों मानकीकरण करके भाषा बनावे की आन्दोलन चलाऔ और पोथी छापी, 'नीके बोल बुन्देली के'।"१०

कैलाश मड़बैया का आत्मकथन को गौर से देखने की जरूरत है। वे भाषा के 'एक्टिविस्ट' हैं। उनका समग्र लेखन बुन्देली भाषा के रसिक या जानकार का कृतितत्व मात्र नहीं है। उनका लेखन एक तरह से बुन्देली भाषा की समृद्धि और उसके उज्ज्वल अभियान

के माफिक है। 'बुन्देली के प्रतिनिधि कवि' और 'जय वीर बुन्देले ज्वानन की' नामक पुस्तक बुन्देली के शिष्ट साहित्य की परम्परा से सम्बन्धित है, 'बुन्देलखण्ड के इतिहास पुरुष' और 'बिंध्य के बाँकुरे' का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड के गौरवशाली इतिहास से है, 'प्यासा बुन्देलखण्ड' का सम्बन्ध संस्कृति से है तो 'बुन्देलखण्ड की लोक कथायें-बुन्देली में' बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य से सम्बन्धित हैं। बुन्देली-काव्य के बाद उनका ध्यान बुन्देली-गद्य की उस ऐतिहासिक भूमिका की ओर गया, जिसमें अभी बहुत कुछ करना शेष था। जिसके बारे में वे महसूस करते हैं कि पूर्व में इस 'तरफन जादों ध्यान नई दऔ गऔ', इसके लिए वे बिना किसी पर तोहमत लगाये स्वयं ही इस दिशा में एक संकल्पवान चेतना के साथ बढ़ चलते हैं। अभाव की पूर्ति बार-बार अभाव के जिफ्र से नहीं किया जा सकती। अभाव की पूर्ति भाव से ही हो सकती है। उनके इसी भाव की स्वभाविक किन्तु ऐतिहासिक परिणति बुन्देली गद्य की 'बाँके बोल बुन्देली के', 'भीठे बोल बुन्देली के' और 'नीके बोल बुन्देली के', जैसी पुस्तकों के रूप में हुयी। इस बात पर सभी सहमत होंगे कि बुन्देली भाषा में जिस मानक और ऊँचाई के साथ काव्य-सृजन हुआ है या हो रहा है, उसके अनुरूप बुन्देली गद्य में काम नहीं हो पाया है। बुन्देली गद्य का प्रयोग बातचीत में होता ही रहा है। पर साहित्य में इसकी वैसी पहुँच नहीं थी जैसी होनी चाहिए। यह बिल्कुल भारतेन्दु-युग के शुरूआती दिनों में हिन्दी गद्य की तरह की स्थिति थी। उस समय में भी बहुत से लोग यही मानते थे कि काव्य की भाषा ब्रज भाषा रहेगी और गद्य की भाषा हिन्दी होगी। यानी ब्रज भाषा में गद्य संभव नहीं है और हिन्दी भाषा में काव्य संभव नहीं है। लेकिन श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि जैसे भाषा-योद्धाओं ने इस मान्यता को गलत साबित कर दिया। ठीक इसी तरह कैलाश मड़बैया ने अपने प्रयत्नों से बुन्देली-गद्य की सृष्टि कर उस अकथित मान्यता को निर्मूल साबित कर दिया जो यह

माने बैठी थी कि बुन्देली भाषा सिर्फ ओज, हास्य, उत्साह, आनंद, गीत-गवर्नई की काव्यात्मक माध्यम है। कैलाश मड़बैया ने बुन्देली भाषा के प्रति प्रारम्भ से चली आ रही उपर्युक्त मान्यता के खंडन में 'करना चाहिए और होना चाहिए' की शैली में भाषण नहीं दिया, बल्कि बुन्देली भाषा में श्रेष्ठतम गद्य रचा। बुन्देली गद्य की उनकी पुस्तकों को, बुन्देली भाषा के लिए, बुन्देली भाषा में किये गये एक जीवंत एवं रचनात्मक 'गद्य आंदोलन' के रूप में देखा जाना चाहिए।

V

'बुन्देली के ललित निबन्ध' पुस्तक के साथ कैलाश मड़बैया ने निबन्ध के सर्वाधिक सशक्त रूप ललित निबन्ध की दिशा में उतरे। बुन्देली गद्य की समृद्धि के लिए यह पुस्तक 'टर्निंग प्वाइंट' की तरह है। इसके साथ ही कैलाश मड़बैया ने बुन्देली समाज, संस्कृति, माटी और मानुष को बुन्देली गद्य में प्रतिष्ठित कर दिया है। इस पुस्तक की ऐतिहासिक भूमिका को रेखांकित करते हुए 'ईसुरी' पत्रिका के संपादक डॉ. राजेन्द्र यादव कहते हैं कि "लेखक ने ललित निबन्धों के साथ बुन्देली में जो वैचारिक निबंध लिखे हैं, उनसे बुन्देली भाषा की क्षमता बढ़ी है। इस संग्रह से एक बात स्पष्ट है कि बुन्देली सरस काव्य के साथ गंभीर गद्य की भी सभी चुनौतियाँ स्वीकारने का दम भरने वाली भाषा बन सकती है। बुन्देली का देर में ही सही अभी भी एक वैज्ञानिक मानकीकरण का प्रश्न इस संग्रह का सबसे जरूरी प्रश्न है जिसका हल बुन्देली साहित्यकारों को अब ढूँढ लेना चाहिए। बुन्देली भाषा के विस्तार के लिए उसका मानक भाषा होना जरूरी हो गया है। निबंध संग्रह बुन्देली माटी की महक अपने शब्दों में लिए बुन्देली भाषा के इतिहास और विकास में एक नयी कड़ी है।"

कैलाश मड़बैया की पुस्तक में बुन्देली-जीवन, बुन्देली संस्कृति और बुन्देली-समाज के विभिन्न प्रसंगों पर 17 ललित निबन्ध हैं। जिनमें 'बुन्देली को उग्रौ और उन्सार', 'भुन्सारे', 'दिवारी', 'कच्ची ईंट..', 'समय कौ

फेर', 'भारतीय सनातन और श्रमण धर्म', 'वैश्वीकरण और लोक संस्कृति', 'सब कुछ बदल रऔ', 'पानी बनाम जिंदगानी', 'लोक तंत्र और लोक परब', 'अखबार', 'आजादी की लड़ाई और बुन्देलखण्ड', 'बुन्देलखण्ड एक असलियत', 'बानपुर की बावन पालें', 'बुन्देलखण्ड के तीरथ', 'ठैरे कम निगे जादौ' और 'बुन्देली कौ मानकीकरण' जैसे विषयों पर बुन्देली भाषा में ललित निबंध हैं।

प्राथमिक तौर पर इन विषयों की भिन्नता देखकर ही कैलाश मड़बैया की तैयारी और सरोकार का अंदाजा लगाया जा सकता है। भाषा, भाषा का मानकीकरण, वैश्वीकरण के दौर में लोक संस्कृति की स्थिति, समय और समाज में आ रहे बदलाव, लोकतंत्र की स्थिति, बुन्देलखण्ड में पानी की समस्या, जंग आजादी में बुन्देलखण्ड की भूमिका, बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक पहचान, कैलास मानसरोवर की यात्रा के बहाने सांस्कृतिक भारत की खोज और अखबारों की सामाजिक भूमिका आदि विषयों पर कैलाश मड़बैया ने अधिकारपूर्वक लिखा है। ये सारे निबन्ध ललित निबन्धों के स्वभाव के अनुकूल आत्मव्यंजक हैं। इन पर बात करते हुए कैलाश मड़बैया का लोकसिक्त मन नुमाया हुआ है। पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि, "अपन जा बताऔ कै अगर ई बड़ी दुनिया में अपनी चिनार नई रैय तो अपनौ अस्तित्व माने जीवै को मरम का रैय? जेउ तो कारन है कै अंग्रेज अपनी संस्कृति चिनार बनाये के लाने जाँ जाँ उनको राज रऔ उतै उतै अंग्रेजी लाद गये। और वे कत भी हैं कै अंग्रेजन के भगाये से का होत, अंग्रेजियत तो नई भगा पा रैय? और जा झूटी भी नइयाँ कै हम जिते अंग्रेजीदौ बनें उतई अपनी संस्कृति खतम हो रई और पच्छिम की अंग्रेजी संस्कृति हावी होत जा रई..." इन ललित निबन्धों की रसात्मक संरचना तो आत्मव्यंजक ही है, किन्तु उसका उत्स बुन्देली संस्कृति के स्वाभिमानी बोध में है। अरुणेश नीरन ने आत्मव्यंजक निबन्धों के बारे में कहा

है कि, “आरंभ काल से ही व्यक्तिव्यंजक निबंध लिखे जाते रहे हैं। तब से अब तक के लेखन में कुछ समान चीजें मिलती हैं - निस्संग फक्कड़पन के साथ आस-पास के जीवन से गहरा लगाव, भाषा के सभी धरातल पर उसकी संभावनाओं की खोज और नई भाषा रचने का उत्साह - नए शब्दों को गढ़ने, पुराने शब्दों को नया अर्थ देने, सामान्य जीवन के वाचक शब्दों और सामान्य मुहावरों को विशेष दीप्ति के साथ दमकाने का लक्ष्य, आधुनिक बोध - जो समसामायिक चेतना को कालातीत चेतना से जोड़ने का संकल्प लेकर ही उपस्थित होता है।”¹³

‘बुंदेली वार्ता कौ उग्रौ और उन्सार’ निबन्ध में वे बुन्देली भाषा की शुरूआत और उसके अबतक के विकास की विशद् एवं तथ्यात्मक चर्चा करते हैं। इस निबन्ध में उनका अध्येता व्यक्तित्व उभर कर आया है। वे प्रख्यात भाषा सर्वेक्षक जार्ज ग्रियर्सन के हवाले से बताते हैं कि “ग्रियर्सन महोदय नें, बुन्देली खों स्वतंत्र भाषा और उत्तर में इटावा तक नौं बोली जावे वारी भाषा बताव तौ। एई सें बुन्देली जैसी पुरानी भाषन कौ विकास अबै की हिन्दी के उद्भव और विकास कौ भी विचार कहाय चाहिये।... कायकै आज की हिन्दी एकदम पेड़ सें नौई उतर आई। आज की हिन्दी कौ जनम उत्तर देस की लोक भाषन सें आ भऔ। सो उन लोकभाषन के गद्य कौ विकास भी हिन्दी के विकास कौ काल कँवाय।”¹⁴ इसमें दो बातें महत्वपूर्ण हैं। पहला, भारत के पहले भाषा सर्वेक्षण में बुन्देलीको स्वतंत्र भाषा माना गया है और दूसरा लोक भाषाओं का विकास आज की हिन्दी का विकास है। ये दोनों बातें प्रस्ताव नहीं, लेखक की स्थापना है। यदि इनमें से केवल दूसरी स्थापना पर विचार किया जाय तो, हम कल्पना कर सकते हैं कि तब हिन्दी साहित्य के इतिहास के स्वरूप में कितना कुछ जुड़ जायेगा। और हिन्दी साहित्य के इतिहास का वह परिवर्तित स्वरूप कितना समृद्धि और कितना समावेशी होगा। कैलाश मड़बैया का यह निबन्ध सिर्फ बुन्देली भाषा और साहित्य के आलोकित इतिहास

का गौरव-गान मात्र न होकर भाषा, साहित्य और उसके इतिहास की स्थापित संरचना में बुनियादी रद्दोबदल की माँग भी करता है।

‘भुँसारे’ निबन्ध बुन्देलखण्ड के प्रातःकाल का वर्णन है। यहाँ जिस आनंद और उल्लास के साथ सुबह का चित्रण उपलब्ध है वह अपने प्रभाव में सम्मोहित करता है। बुन्देलखण्ड के बारे में मशहूर है कि यहाँ कि सुबहें सोने की और रातें चाँदी की होती हैं। सुबह-सबरे की पूरी चर्या और प्रकृति के रागात्मक सम्बन्ध को लेखक ने मनोहारी वर्णन किया है। निबंध के अखीर में वाचिक परम्परा की किसी लोककथा की तरह लेखक ने आश्वस्ति प्रकट करते हुए कहा है कि “चुनगुनन खों चुन तौ मजूरन खों उद्यम। आसा खों आसमान तौ धरा खों नाज अकुरावे की पजान। सूरज खों काम तौ चंदा खों विसराम।... भगवान सबके दिन डूबे आराम देंय उर भुँसारे नये नये काम देंय।”¹⁵ ‘भुँसारे’ निबन्ध में बुन्देली भाषा का वैभव और लोक की रागात्मक चेतना का उछाह भरा पड़ा है। इस निबन्ध को पढ़ते समय अनायास ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रसिद्ध ललित निबन्ध ‘महकवि माघ का प्रभात वर्णन’ की याद आती है। उद्देश्य और प्रभाव को लेकर इन दोनों निबन्धों में अद्भुत साम्य है किन्तु भाषा और संरचना के स्तर पर वही अन्तर है जो लोक और शास्त्र में होता है।

‘दिवारी’ निबन्ध में बुन्देलखण्ड की दीपावली के माध्यम से श्रेष्ठतम परम्पराओं के छीजते चले जाने का मलाल व्यक्त हुआ है। तो वहीं ‘कच्ची ईंट बाबुल देरी न धरियौ’ बेटियों के जीवन और उससे जुड़े प्रश्नों से मार्मिक रूप से सम्बद्ध है। निबन्ध का शीर्षक एक लोकगीत से लिया गया है। जो स्वयं में ही स्त्री-पीड़ा का आख्यान है। कैलाश मड़बैया के सभी निबन्ध विषयों की भिन्नता के बावजूद इनकी संवेदना और तार्किकता में साम्यता है। कैलाश मड़बैया अपने अन्य निबन्धों में भी बुन्देली भाषा और संस्कृति के हवाले से अर्चभित करते चलते हैं।

इन निबन्धों का जोर ऐसा है कि पाठक इनकी आत्मीयता के धागे से बँध कर लेखक के भावों से ऐसी अंतरंगता स्थापित कर लेता है कि पाठक और लेखक दोनों 'एक नाव के यात्री' हो जाते हैं। भाव, विचार, परिवेश, कहानियाँ, घटनाएँ सबकुछ साझी हो जाती हैं। कैलाश मड़बैया किसी भी विषय पर बात करते हुए पाठक को सम्मोहित करते रहते हैं, जैसे ही पाठक उस सम्मोहन में डूबने लगता है, वैसे ही वे एक झटके से उस सामान्य सी बात को इतने बड़े सन्दर्भ से जोड़ देते हैं कि पाठक स्वयं को एक विराट चेतना या परिवेश का हिस्सा महसूस करने लगता है।

कैलाश मड़बैया के इन ललित निबन्धों में गाँव की मिट्टी का महत्व ज्यादा है। कैलाश मड़बैया ने अपने ललित निबन्धों को बुन्देली भाषा के सार्थक और जरूरी मुहावरे से संवारा है। इन निबन्धों में शास्त्र की ठोस दृढ़ता और लोक का भोलापन दोनों विद्यमान हैं। पर एक दूसरे के विरोधी नहीं एक दूसरे के परम स्नेही बनकर।

कैलाश मड़बैया ने अपने ललित निबन्ध के माध्यम से बुन्देली भाषा की हस्ती को और अधिक संवादी, और अधिक समृद्ध तो किया ही है, साथ ही बुन्देली गद्य की सत्ता को वैभवशाली बनाते हुये इसके लिये लिये नवीन संभावनाओं के द्वार खोल दिये हैं। निबंधकार ने अपने सर्जना के छुनन से बुन्देली भाषा के गद्य को रोशनी से भर दिया है। मानवीय भरोसे की सृजनात्मक आवाज को ऊँचाई देने में गद्य हमेशा से समर्थ रहा है। कैलाश मड़बैया के बुन्देली ललित निबन्धों की दृष्टि से देखा जाय तो ये बुन्देली गद्य के क्षेत्र में पहले-पहल का काम हैं। अतः इनमें आदि से

अन्त तक 'सद्यः सीरोत्कर्षण सुरभि' (ताजे जुते हुए खेत की गंध) व्याप्त है। आगे चलकर बुन्देली गद्य का यह सौरभ बुन्देली-जाति के वैभव के रूप में और अधिक पल्लवित होगा।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ.सं. 409, ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् 2015
2. <https://hi.wikipedia.org/wiki/निबन्ध>
3. <https://www.hindisamay.com/content/6787/1/अरुणेश-नीरन-निबंध-ललित-निबंध-और-हिन्दी-गद्य.csp>
4. बुन्देली के ललित निबन्ध, पृ. 06
5. वही
6. वही
7. शर्मा रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2003, पृ. 333
8. बुन्देली के ललित निबन्ध, पृ. 07
9. शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य की भूमिका, 1996, राजकमल प्रकाशन, पृ - 351
10. बुन्देली के ललित निबन्ध, पृ. 08
11. <https://shatrangtimes.page/article/-bundelee-mein-gady-kee-aadhaarashila-/xuvWdA.html>
12. बुन्देली के ललित निबन्ध, भूमिका से
13. <https://www.hindisamay.com/content/6787/1/अरुणेश-नीरन-निबंध-ललित-निबंध-और-हिन्दी-गद्य.csp>
14. बुन्देली के ललित निबन्ध, पृ. 09
15. बुन्देली के ललित निबन्ध, पृ. 18

